Research Paper | Philosophy | E-ISSN No : 2454-9916 | Volume : 5 | Issue : 7 | July 2019



VEDANT DARSHANIKO KE CHINTAN ME JIV, JAGAT EVAM BRAHM KA SWAROOP

वेदान्त दार्शनिकों के चिन्तन में जीव, जगत् एवं ब्रह्म का स्वरूप

Kirti Chandrika

Research Scholar, Dept. of Philosophy, L.N.M.U, Darbhanga, Bihar, India.

ABSTRACT

वेदान्त की तीन शाखाएँ जो सबसे ज्यादा जानी जाती है वे हैं अद्वैत वेदान्त, विशिष्ट अद्वैत और द्वैत। आदि शंकराचार्य, रामानुज और श्री मध्वाचार्य जिनको क्रमशः इन तीनों शाखाओं का प्रवर्तक माना जाता है। इनके अलावा भी अन्य शाखाएँ है। ये शाखाएँ अपने प्रवर्तकों के नाम से जानी जाती हैं जिनमें भास्कर, वल्लभ, चैतन्य, निम्बारक, वाचस्पति मिश्र, सुरेश्वर और विज्ञान भिक्षु। आधुनिक काल में जो प्रमुख वेदान्ती हुये हैं उनमें रामकृष्ण परमहंस, स्वामी विवेकानंद, अरविंद घोष, स्वामी शिवानंद, स्वामी करपात्री और रमण महर्षि उल्लेखनीय हैं। ये आधुनिक विचारक अद्वैत वेदान्त शाखा का प्रतिनिधित्व करते हैं। दूसरे वेदान्तों के प्रवर्तकों ने भी अपने विचारों को भारत में भलीभांति प्रचारित किया है परन्तु भारत के बाहर उन्हें बहुत कम जाना जाता है।

शब्द संकेत : वेदान्त, अद्वैत, द्वैत, विशिष्ट अद्वैत।

विषय प्रवेश :
वेदान्त ज्ञानयोग की एक शाखा है जो व्यक्ति को ज्ञान प्राप्ति की दिशा में उत्प्रेरित करता है। इसका मुख्य स्रोत उपनिषद् है जो वेद ग्रंथों और अरण्यक ग्रंथों का सार समझे जाते हैं। उपनिषद् वैदिक साहित्य का अंतिम भाग है इसीलिए इसको वेदान्त कहते हैं। ज्ञान का विवेचन उपनिषदों में है। वेदान्त का शब्दिक अर्थ है वेदों का अंत।

वेदान्त की तीन शाखाएँ जो सबसे ज्यादा जानी जाती है वे हैं अद्वैत वेदान्त, विशिष्ट अद्वैत और द्वैत। आदि शंकराचार्य, रामानुज और श्री मध्वाचार्य जिनको क्रमशः इन तीनों शाखाओं का प्रवर्तक माना जाता है। इनके अलावा भी अन्य शाखाएँ है। ये शाखाएँ अपने प्रवर्तकों के नाम से जानी जाती हैं जिनमें भास्कर, वल्लभ, चैतन्य, निम्बारक, वाचस्पति मिश्र, सुरेश्वर और विज्ञान भिक्षु। आधुनिक काल में जो प्रमुख वेदान्ती हुये हैं उनमें रामकृष्ण परमहंस, स्वामी विवेकानंद, अरविंद घोष, स्वामी शिवानंद, स्वामी करपात्री और रमण महर्षि उल्लेखनीय हैं। ये आधुनिक विचारक अद्वैत वेदान्त शाखा का प्रतिनिधित्व करते हैं। दूसरे वेदान्तों के प्रवर्तकों ने भी अपने विचारों को भारत में भलीभांति प्रचारित किया है परन्तु भारत के बाहर उन्हें बहुत कम जाना जाता है।

वेदान्त शब्द मूलतः उपनिषदों के लिए प्रयुक्त होता था। अलग–अलग संहिताओं तथा उनकी शाखाओं से संबंध अनेक उपनिषद् हमें प्राप्त है। जिनमें प्रमुख तथा प्राचीन हैं – ईश, केन, कठ, मुण्डक, माण्डूक्य, तैत्तिरीय, ऐतरेय, छान्दोग्य तथा बृहदारण्यक। इन उपनिषदों के दार्शनिक सिद्धान्तों में काफी कुछ समानता है किन्तु अनेक स्थानों पर विरोध भी प्रतीत होता है। कालान्तर में यह आवश्यकता अनुभव की गई कि विरोधी प्रतीत होने वाले विचारों में समन्वय स्थापित कर सर्वसम्मत उपदेशों का संकलन किया जाये। इसी आवश्यकता की पूर्ति के लिए बादरायण व्यास ने ब्रह्मसूत्रा की रचना की जिसे वेदान्त सूत्रा या उत्तरमीमांसा भी कहा जाता है। इसमें उपनिषदों के सिद्धान्तों को अत्यन्त संक्षेप में सूत्रा रूप में संकलित किया गया है।

अत्यधिक संक्षेप होने के कारण सूत्राों में अपने आप में अस्पष्टता है और उन्हें बिना भाष्य या टीका के समझना सम्भव नहीं है। इसीलिए अनेक भाष्यकारों ने अपने–अपने भाष्यों द्वारा इनके अभिप्राय को स्पष्ट करने का प्रयत्न किया किन्तु इस स्पष्टीकरण में उनका अपना–अपना दृष्टिकोण था और इसीलिए उनमें पर्याप्त मतभेद है। प्रत्येक ने यह सिद्ध करने की चेष्टा की कि उसका भाष्य ही ब्रह्मसूत्राों के वास्तविक अर्थ का स्पष्टीकरण करता है। फलतः सभी भाष्यकार एक–एक वेदान्त सम्प्रदाय के प्रवर्तक बन गये। इनमें प्रमुख है शंकर का अद्वैतवाद, रामानुज का विशिष्टाद्वैतवाद्, मध्व का द्वैतवाद, निम्बार्क का द्वैताद्वैतवाद तथा वल्लभ का शुद्धाद्वैतवाद। इन भाष्यों के अनन्तर इन भाष्यों पर टीकाएँ तथा टीकाओं पर टीकाओं का क्रम चला। अपने–अपने सम्प्रदाय के मत को पुष्ट करने के लिए अनेक स्वतंत्रा ग्रन्थों की भी रचना हुई।

अद्वैत वेदान्त :
गौडपाद (300 ई.) तथा उनके अनुवर्ती आदि शंकराचार्य (700 ई.) ब्रह्म को प्रधान मानकर जीव और जगत् को उससे अभिन्न मानते हैं। उनके अनुसार तत्व को उत्पत्ति और विनाश से रहित होना चाहिए। नाशवान् जगत तत्व शून्य है, जीव भी जैसा दिखाई देता है वैसा तत्वतः नहीं है। जाग्रत और स्वप्नावस्थाओं में जीव जगत में रहता है परंतु सुषुप्ति में जीव प्रपंच ज्ञानशून्य चेतनावस्था में रहता है। इससे सिद्ध होता है कि जीव का शुद्ध रूप सुषुप्ति जैसा होना चाहिए। सुषुप्ति अवस्था अनित्य है। अतः इससे परे तुरीयावस्था को जीव का शुद्ध रूप माना जाता है। इस अवस्था में नश्वर जगत् में कोई संबंध नहीं होता और जीव को पुनः नश्वर जगत् में प्रवेश भी नहीं करना पड़ता। यह तुरीयावस्था अभ्यास से प्राप्त होती है। ब्रह्म–जीव–जगत् में अभेद का ज्ञान उत्पन्न होने पर जगत् जीव में तथा जीव ब्रह्म में लीन हो जाता है। तीनों में वास्तविक अभेद होने पर भी अज्ञान के कारण जीव जगत् को अपने से पृथक समझाता है। परन्तु स्वप्नसंसार की तरह जाग्रत संसार भी जीव की कल्पना है। भेद इतना ही है कि स्वप्न व्यक्तिगत कल्पना का परिणाम है जबकि जाग्रत अनुभव–समष्टि–गत महाकल्पना का। स्वप्नजगत् का ज्ञान होने पर दोनों में मिथ्यात्व सिद्ध है। परंतु बौद्धों की तरह वेदान्त में जीव को जगत् का अंग होने के कारण मिथ्या नहीं माना जाता। मिथ्यात्व का अनुभव करनेवाला जीव परम सत्य है, उसे मिथ्या मानने पर सभी ज्ञान को मिथ्या मानना होगा। परंतु जिस रूप में जीव संसार में व्यवहार करता है उसका वह रूप अवश्य मिथ्या है। जीव की तुरीयावस्था भेदज्ञान शून्य शुद्धावस्था है। ज्ञाता–ज्ञेय–ज्ञान का संबंध मिथ्या संबंध है। इनसे परे होकर जीव अपनी शुद्ध चेतनावस्था को प्राप्त होता है। इस अवस्था में भेद का लेश भी नहीं है क्योंकि भेद द्वैत में होता है। इसी अद्वैत अवस्था को ब्रह्म कहते हैं। तत्व असीम होता है, यदि दूसरा तत्व भी हो तो पहले तत्व की सीमा हो जाएगी और सीमित हो जाने से वह तत्व बुद्धिगम्य होगा जिसमें ज्ञाता ज्ञेय–ज्ञान का भेद प्रतिभासित होने लगेगा। अनुभव साक्षी है कि

सभी ज्ञेय वस्तुएं नश्वर हैं। अतः यदि हम तत्व को अनश्वर मानते हैं तो हमें उसे अद्वैत, अज्ञेय, शुद्ध चैतन्य मानना ही होगा। रस्सी में प्रतिभासित होनेवाले सर्प की तरह यह जगत न तो सत् है न असत् है। सत् होता तो इसका कभी नाश न होता, असत् होता तो सुख, दुख का अनुभव न होता। अतः सत् असत् से विलक्षण अनिवर्चनीय अवस्था ही वास्तविक अवस्था हो सकती है। उपनिषदों में नेति कहकर इसी अज्ञातावस्था का प्रतिपादन किया गया है। अज्ञान भाव रूप है क्योंकि इससे वस्तु के अस्तित्व की उपलब्धि होती है, यह अभाव रूप है, क्योंकि इसका वास्तविक रूप कुछ भी नहीं है। इसी अज्ञान को जगत् का कारण माना जाता है। अज्ञान का ब्रह्म के साथ क्या संबंध है, इसका सही उत्तर कठिन है परंतु ब्रह्म अपने शुद्ध निर्गुण रूप में अज्ञान विरहित है, किसी तरह वह भावाभाव विलक्षण अज्ञान से आवकृत्त होकर सगुण ईश्वर कहलाने लगता है और इस तरह सृष्टिक्रम चालू हो जाता है। ईश्वर को अपने शुद्ध रूप का ज्ञान होता है परंतु जीव को अपने ब्रह्मरूप का ज्ञान प्राप्त करने के लिए साधना के द्वारा ब्रह्मीभूत होना पड़ता है। गुरू के मुख से तत्वमसि का उपदेश सुनकर जीव अहं ब्रह्मास्मि का अनुभव करता है। उस अवस्था में संपूर्ण जगत् को आत्ममय तथा अपने में सम्पूर्ण जगत् को देखता है क्योंकि उस समय उसके (ब्रह्म) के अतिरिक्त कोई तत्व नहीं होता। इसी अवस्था को तुरीयावस्था या मोक्ष कहते हैं।

विशिष्टाद्वैत वेदान्त :

रामानुजाचार्य ने शंकर मत के विपरीत यह कहा कि ईश्वर स्वतंत्रा तत्व है परंतु जीव भी सत्य है, मिथ्या नहीं। ये जीव ईश्वर के साथ संबंध हैं। उनका यह संबंध भी अज्ञान के कारण नही है। वह वास्तविक है। मोक्ष होने पर भी जीव की स्वतंत्रा सत्ता रहती है। भौतिक जगत् और जीव अलग अलग रूप से सत्य हैं परंतु ईश्वर की सत्यता इनकी सत्यता से विलक्षण है। ब्रह्म पूर्ण है, जगत जड़ है। जीव अज्ञान और दुःख से घिरा है। ये तीनों मिलकर एकाकार हो जाते हैं क्योंकि जगत् और जीव ब्रह्म के शरीर हैं और ब्रह्म इनकी आत्मा तथा नियंता है। ब्रह्म से पृथक इनका अस्तित्व नहीं है, ये ब्रह्म की सेवा करने के लिए ही है। इस दर्शन में अद्वैत की जगत बहुत्व की कल्पना है परंतु ब्रह्म अनेक में एकता स्थापित करनेवाला एक तत्व है। बहुत्व से विशिष्ट अद्वैत ब्रह्म का प्रतिपादन करने के कारण इसे विशिष्टाद्वैत कहा जाता है।

विशिष्टाद्वैत मत में भेदरहित ज्ञान असंभव माना गया है। इसीलिए शंकर का शुद्ध अद्वैत ब्रह्म इस मत में ग्राह्य नहीं है। ब्रह्म सविशेष है और उसकी विशेषता इसमें है कि उसमें सभी सत् गुण विद्यमान है। अतः ब्रह्म वास्तव में शरीरी ईश्वर है। सभी वैयक्तिक आत्माएं सत्य हैं और इन्हीं से ब्रह्म का शरीर निर्मित है। ये ब्रह्म में, मोक्ष होने पर लीन नहीं होती, इनका अस्तित्व अक्षुण्ण बना रहता है। इस तरह ब्रह्म अनेकता में एकता स्थापित करनेवाला सूत्रा है। यही ब्रह्म प्रलय काल में सूक्ष्मभूत और आत्माओं के साथ कारण रूप में स्थित रहता है परंतु सृष्टिकाल में सूक्ष्म स्थूल रूप धारण कर लेता हैं यही कार्य ब्रह्म कहा जाता है।

द्वैत वैदांत :

मध्व (1197 ई0) ने द्वैत वेदान्त का प्रचार किया जिसमें पांच भेदों को आधार माना जाता है – जीव ईश्वर, जीव जीव, जीव जगत, ईश्वर जगत् जगत् जगत्। इनमें भेद स्वतः सिद्ध है। भेद के बिना वस्तु की स्थिति असंभव है। जगत् और जीव ईश्वर से पृथक हैं किन्तु ईश्वर द्वारा नियंत्रित हैं। सगुण ईश्वर जगत् का स्रष्टा, पालक और संहारक है। भक्ति से प्रसन्न होनेवाले ईश्वर के इशारे पर ही सृष्टि का खेल चलता है। यद्यपि जीव स्वभावतः ज्ञानमय और आनंदमय है परंतु शरीर, मन आदि के संसर्ग से इसे दुःख भोगना पड़ता हैं यह संसर्ग कर्मों के परिणामस्वरूप होता है। जीव ईश्वरनियंत्रित होने पर भी कर्ता और फलभोक्ता है। ईश्वर में नित्य प्रेम ही भक्ति है जिससे जीव मुक्त होकर, ईश्वर के समीप स्थित होकर, आनंदभोग करता है। भौतिक जगत्, ईश्वर के अधीन है और ईश्वर की इच्छा से ही सृष्टि और प्रलय में यह क्रमशः स्थूल और सूक्ष्म अवस्था में स्थित होता है। रामानुज की तरह मध्व जीव और जगत् को ब्रह्म का शरीर नहीं मानते हैं। ये स्वतःस्थित तत्व है। उनमें परस्पर भेद वास्तविक है। ईश्वर केवल इनका नियंत्राण करता है। इस दर्शन में ब्रह्म जगत् का निमित्त कारण है, प्रकृति (भौतिक तत्व) उपादान कारण है।

द्वैताद्वैत वेदान्त :

श्रीनिम्बार्काचार्य ने ब्रह्म ज्ञान का कारण एकमात्रा शास्त्रा को माना है। सम्पूर्ण धर्मों का मूल वेद है। वेद विपरीत स्मृतियाँ अमान्य है। जहाँ श्रुति में परस्पर द्वैत भी आता हो वहाँ श्रुति रूप होने से दोनों ही धर्म हैं। किसी एक को उपादेय तथा अन्य को हेय नहीं कहा जा सकता। तुल्य बल होने से सभी श्रुतियाँ प्रधान हैं। किसी के प्रधान व किसी के गौण भाव की कल्पना करना उचित नहीं है। इसी तथ्य को ध्यान में रखते हुए भिन्न रूप में श्रुतियों का भी समन्वय करके निम्बार्क दर्शन ने स्वाभाविक भेदाभेद संबंध का स्वीकृत किया है। इसमें समन्वयात्मक दृष्टि होने से भिन्न रूप श्रुति का भी परस्पर कोई विरोध नहीं होता। अतएव निम्बार्क दर्शन को अविरोध मत के नाम से भी अभिहित करते हैं। श्रुतियों में कुछ भेद का बोध कराती हैं तो कुछ अभेद का निर्देश देती है।

यथा – पराऽय शक्तिर्विविधैव श्रूयते, स्वाभाविक ज्ञान

'बल–क्रिया च' (श्ले0 3/1)

'यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते, येन जातानि जीवन्ति,

यत्प्रयन्त्यभि संविशन्ति (तै0 3/1/1)।

नित्यो नित्यानां चेतश्नचेतनानामेको बहूनां यो विद्यति

कामान् (कठ0 5/13) अहं सर्वस्य प्रभवो मत्तः सर्वं प्रवर्तते। (गीता 10/8)

इत्यादि श्रुतियाँ ब्रह्म और जगत के भेद का प्रतिपादन करती है।

'सदेव सौम्येदमग्र असीदेकमेवाद्वितीयम् (छा0 6/2 1)

आत्मा वा इदमेकमासीत् (तै0 2/1) तत्त्वमसि' (छा./142 3)

अयमात्मा ब्रह्म (बृ0 2/5/16) सर्वं खल्विंद ब्रह्म' (छा. 3/14/1)

मयि सर्वमिदं प्रोतं सूत्रो मणि गणा इव (गी, 7,7)

इत्यादि अभेद का बोध कराती हैं।

इस प्रकार भेद और अभेद दोनों विरूद्ध पदार्थों का निर्देश करने वाली श्रुतियों में से किसी एक प्रकार की श्रुति को उपादेय अथवा प्रधान कहें तो दूसरी को हेय या गौण कहना पड़ेगा। इससे शास्त्रा की हानि होती है। क्योंकि वेद सर्वांशतया प्रमाण है। श्रुति स्मृतियों का निर्णय है। अतः तुल्य होने से भेद और अभेद दोनों को ही प्रधान मानना होगा, व्यावहारिक दृष्टि से यह सम्भव नहीं। भेद अभेद नहीं हो सकता और अभेद को भेद नहीं कह सकते। ऐसी स्थिति में कोई ऐसा मार्ग निकालना होगा कि दोनों में विरोध न हो तथा समन्वय हो जाय।

श्रीनिम्बार्काचार्यपाद ने उक्त समस्या का समाधान करके ऐसे ही अविरोधी समन्वयात्मक मार्ग का उपदेश किया है।

उनका कहना है –

ब्रह्म जगत् का उपादान कारण है। उपादान अपने कार्य से अभिन्न होता है। स्वयं मिट्टी ही घड़ा बन जाती है। उसके बिना घड़े की कोई सत्ता नहीं। कार्य अपने कारण में अति सूक्ष्म रूप से रहते हैं। उस समय नाम रूप का विभाग न होने के कारण कार्य का पृथक रूप से ग्रहण नहीं होता पर अपने कारण में उसकी सत्ता अवश्य रहती है। इस प्रकार कार्य व कारण की ऐक्यावस्था को ही अभेद कहते हैं।

'सदेव सौम्येदग्र असीत्' इत्यादि श्रुतियों का यह ही अभिप्राय है। इसी से सत् ख्याति की उपपत्ति होती है। सद्रूप होने से यह अभेद स्वाभाविक है।

दृश्यमान जगत् ब्रह्म का ही परिणाम है। वह दूध से दही जैसा नहीं है। दूध, दही बनकर अपने दुग्धत्व को जिस प्रकार समाप्त कर देता है, वैसे ब्रह्म जगत् के रूप में परिणत होकर अपने स्वरूप को समाप्त नहीं करता, अपितु मकड़ी के जाले के समान अपनी शक्ति का विक्षेप करके जगत् की सृष्टि करता है। यह ही शक्ति–विक्षेप लक्षण परिणाम है।

यस्तन्तुनाभ इव तन्तुभिः प्रधानजैः।

स्वभावतो देव एकः। समावृणोति स नो दधातु ब्रहमाव्ययम्।।
(श्वे0 6/10)

'यदिदं कि×च तत् सृष्ट्वा तदेवानु प्राविशत् (तै. 2/6)

इत्यादि श्रुतियाँ इसमें प्रमाण हैं।

ब्रह्म ही प्राणियों को अपने–अपने किये कर्मों का फल भुगताता है, अतः जगत् का निमित्त कारण होने से ब्रह्म और जगत् का भेद भी सिद्ध होता है, जो कि अभेद के समान स्वाभाविक ही है।

इसी समन्वयात्मक दार्शनिक प्रणाली को स्वाभाविक भेदाभेद अथवा स्वाभाविक द्वैताद्वैत शब्द से अभिहित करते हैं, जिसका उपदेश श्रीनिम्बार्काचार्य ने किया है।

शुद्धाद्वैत वेदान्त :

बल्लभ (1479) के इस मत में ब्रहम स्वतंत्रा तत्व है। सच्चिदानंद श्रीकृष्ण ही ब्रह्म हैं और जीव तथा जगत् उनके अंश हैं। अपनी इच्छा से अपने आप को जीव और जगत् के नाना रूपों में प्रकट करता है। माया उसकी शक्ति है जिसी सहायता से वह एक से अनेक होता है। परंतु अनेक मिथ्या नहीं है। श्रीकृष्ण से जीव–जगत् की स्वभावत् उत्पत्ति होती है। इस उत्पत्ति से श्रीकृष्ण में कोई विकार नहीं उत्पन्न होता। जीव–जगत् तथा ईश्वर का संबंध चिनगारी आग का संबंध है। ईश्वर के प्रति स्नेह भक्ति हैं सांसारिक वस्तुओं से वैराग्य लेकर ईश्वर में राग लगाना जीव का कर्तव्य है। ईश्वर के अनुग्रह से ही यह भक्ति प्राप्य है, भक्त होना जीव के अपने वश में नहीं है। ईश्वर जब प्रसन्न हो जाते हैं तो जीव को (अंश) अपने भीतर ले लेते हैं या अपने पास नित्यसुख का उपभोग करने के लिए रख लेते है। इस भक्तिमार्ग को पुष्टिमार्गा भी कहते हैं।

अचिंत्य भेदाभेद वेदान्त :

महाप्रभु चैतन्य (1485–1533) के इस संप्रदाय में अनंत गुणनिधान, सच्चिदानंद श्रीकृष्ण परब्रह्म माने गए है। ब्रह्म भेदातीत है। परंतु अपनी शक्ति से वह जीव और जगत् के रूप में आविभूर्त होता हैं ये ब्रह्म से भिन्न और अभिन्न हैं। अपने आप में वह निमित्त कारण है परंतु शक्ति से संपर्क होने के कारण वह उपादान कारण भी हैं उसकी तटस्थशक्ति से जीवों का तथा मायाशक्ति से जगत् का निर्माण होता है। जीव अनंत और गुण रूप हैं। यह सूर्य की किरणों की तरह ईश्वर पर निर्भर है। संसार उसी का प्रकाश है अतः मिथ्या नहीं है। मोक्ष में जीव का अज्ञान नष्ट होता है पर संसार बना रहता है। वेदशास्त्रानुमोदित मार्ग से ईश्वरभक्ति होती है जिसे रूचि या रागानुगा भक्ति कहते हैं। राधा की भक्ति सर्वोत्कृष्ट है। वृंदावन धाम में सर्वदा कृष्ण का आनंदपूर्ण प्रेम प्राप्त करना ही मोक्ष है।

पर्वू अध्ययनों की समीक्षा :

पूर्व अध्ययनों की समीक्षा के क्रम में विभिन्न आचार्यों द्वारा लिखित पुस्तकों का अवलोकन किया गया है जिसमें :

स्वामी विवेकानन्द (2010) द्वारा लिखित पुस्तक 'वेदान्त' में कहना है कि वेदान्त द्वारा प्रतिपादित सत्य–सिद्धान्त एकांगी नहीं वरण सर्वजनीन है और साथ ही वे शाश्वत स्वरूप के हैं। फलतः वे सभी व्यक्तियों को, वे किसी भी जाति, सम्प्रदाय अथवा राष्ट्र के और किसी भी युग में रहने वाले क्यों न हो, आदर्श जीवन निर्माण में सहायता प्रदान करते हैं।

श्री राम शर्मा आचार्य (2011) द्वारा लिखित पुस्तक 'वेदान्त दर्शन' में कहना हैं कि कर्मयोग का जितने विवेचन वेदान्त में है, वह कहीं और देखने को नहीं मिलता। इस प्रकार वेदान्त अध्यात्म के गहरे रहस्यों को उद्घाटन करता है एवं उन्हें सहज–सरल बनाकर सबके सामने रख देता है।

स्वामी ब्रह्म मुनि (1964) द्वारा लिखित पुस्तक 'वेदान्त दर्शन' में कहना है कि वेदान्त दर्शन के उपदेश युगों–युगों तक मानवीय समाज के लिए सदा सार्थक सिद्ध होता रहेगा।

मैक्स मूलर (1904) द्वारा लिखित पुस्तक 'थ्री लेट्र्स ऑन द वेदान्त फिलॉसफी' में कहना है कि सभी तत्व ज्ञान की विचार धाराओं में वेदान्त सर्वोत्तम है क्योंकि वह हर प्रकार के तत्व ज्ञानों को और सभी धर्मों को समन्वय करता है।

अध्ययन का उद्देश्य :

वेदान्त दर्शन विषय से संबंधित इस आलेख का उद्देश्य निम्नलिखित तथ्यों पर आधारित है :–

- इस अध्ययन के आधार पर भारतीय वेदान्त दार्शनिकों के चिन्तन में वेदान्त का स्वरूप को तथ्यपरक विश्लेषण किया गया है।
- भारतीय वेदान्त दार्शनिकों के चिन्तन में मानवीय मूल्य और वेदान्त के उद्देश्य का विश्लेषण किया गया है।

अध्ययन पद्धति :

यह शोध आलेख मुख्य रूप से वर्णन एवं विश्लेषणात्मक एवं ऐतिहासिक आलोचनात्मक अध्ययन पद्धति पर आधारित है। वर्तमान अध्ययन भारतीय वेदान्त दार्शनिकों के चिन्तन में वेदान्त का स्वरूप के विविध पक्षों के अन्वेषण से संबंधित है अतः यह शोध आलेख मुख्य रूप से द्वैतियक स्रोत पर आधारित है। इस अध्ययन के लिए मूल अध्ययन स्रोत पत्रा–पत्रिकाओं एवं दस्तावेज तथा विभिन्न आचार्यों द्वारा सम्पादित पुस्तकों द्वारा लिया है।

निष्कर्ष :

हमारे देश में किसी भी काल में जितने दार्शनिक सम्प्रदाय, मत मतान्तर हुए हैं, वे सभी वेदान्त दर्शन के अन्तर्गत आते हैं। न केवल हमारे देश में अपितु विश्व में कहीं भी जो दार्शनिक विचारधारा विकसित होती है, वह वेदांत दर्शन के बुनियादी आधारों पर ही विकसित हो सकती है। वेदांत स्वयं सभी प्रकार की मत भिन्नताओं को उनकी समग्रता में स्वीकार करता है। अपितु वह तो एक दार्शनिक प्रणाली है, जो जीवन की लौकिक और परलौकिक समझ को विकसित करके हमें अनुभूति जगत से जुड़ने की क्षमता से संपन्न करती है। शंकर ने अद्वैत को, रामानुज ने विशिष्टाद्वैत को तथा मध्व ने द्वैत को पुनः संस्थापित किया है इन सभी मतों में अनेक स्थूल भिन्नताएं होने के बावजूद उनका मूल दार्शनिक आधार एक ही हैं। सभी मतों में जीवन की सनातन जिज्ञासाएं शाश्वत मूल्यों के बीच ही परिष्कार पाती है।

संदभ्र स्रोत :

1. स्वामी विवेकानन्द (2010) 'वेदान्त', रामकृष्ण मठ, कलकता।
2. श्री राम शर्मा आचार्य (2011) 'वेदान्त दर्शन', युग निर्माण योजना विस्तार ट्रस्ट, मथुरा।
3. स्वामी ब्रह्म मुनि (1964) 'वेदान्त दर्शन', सर्व वैदिक आर्य प्रतिनिधि सभा, नई दिल्ली।
4. मैक्स मूलर (1904) 'थ्री लेट्र्स ऑन द वेदान्त फिलॉसफी' लॉग मैन, ग्रीन एण्ड को0, न्यूयार्क।